पूज्य लालचंदभाई का प्रवचन
श्री समयसार गाथा १८१-१८३
भगवान महावीर जन्म जयंती
ता. ०७-०४-१९९०, प्रवचन नंबर २८१

आज, अपने परम उपकारी ऐसे भगवान महावीर का आज जन्मदिवस है। चौबीस तीर्थंकर हुये, उनमें पहले ऋषभदेव भगवान हुए और उनके ही पौत्र (पोते) क्रम-क्रम में चौबीसवें तीर्थंकर हुए। मारीचि का जीव था वहाँ ऋषभदेव भगवान के समय में। उनका तो अनंत उपकार है अपने ऊपर कि जिन्होंने आत्मा का स्वरूप बताया। उन्होंने तो प्रत्यक्ष आत्मा का अनुभव गृहस्थ अवस्था में किया; मुनिदशा अंगीकार करके अंदर में जाकर आत्मध्यान द्वारा शुक्लध्यान की श्रेणी आरंभ की; और केवलज्ञान प्रगट किया; और केवलज्ञान प्रगट होते ही देव ऊपर से केवलज्ञान कल्याणक मनाने आते हैं। ऐसे भगवान महावीर, वीर, महावीर, सन्मतिनाथ, वर्धमान स्वामी, ऐसे चार नाम हैं (पाँचवा नाम अतिवीर)। महावीर - जैसा नाम वैसे ही उनके गुण हैं। महावीर - बहुत वीर्यवान, बहुत पुरुषार्थी (थे और) अनंत पुरुषार्थ उन्होंने किया।

पुरुषार्थ की व्याख्या में बड़ी गड़बड़ है। जगत के जीव ऐसा मानते हैं कि कुछ परपदार्थ का करना उसका नाम पुरुषार्थ है। उसका नाम पुरुषार्थ नहीं है। परपदार्थ की कर्ताबुद्धि छूटकर, परपदार्थ की ज्ञाताबुद्धि छोड़कर और उपयोग को निःशेषपने अंतर्मुख करते हैं, उपयोग जरा भी बाहर जाता नहीं, ऐसी साधक की अवस्था श्रेणी में आती है, तब उपयोग दो घड़ी अंदर में जम जाता है, तब केवलज्ञान प्रगट होता है। और तीर्थंकर, जितने-जितने तीर्थंकर भूतकाल में हुए और होते हैं और होंगे, ऐसे तीर्थंकर जो हों उनकी दिव्यध्वनि छूटती- छूटती और छूटती ही है। समवशरण की रचना होती है। हजारों-लाखों जीव समवशरण में आते-जाते हैं। मिथ्यात्व लेकर आते हैं और सम्यग्दर्शन प्राप्त करके बाहर निकलते हैं। एक ही व्याख्यान में बस हो जाये उसको! आहाहा! ऐसे पके हुए जीव, तैयार जीव आते हैं कि जिनको दिव्यध्वनि निमित्त होती है। सर्वज्ञ भगवान की वाणी उनको निमित्त होती है और अंतर में जाकर अपने आत्मा का अनुभव करते हैं, आत्म-साक्षात्कार। आत्मदर्शन श्रेष्ठ है, आत्मा का दर्शन श्रेष्ठ है।

अनंत-अनंतकाल बीता उसने आत्मा का दर्शन किया नहीं। चौबीस तीर्थंकर के दर्शन किये और जब तक मोक्ष नहीं होगा, तब तक ये तीर्थंकर की सभा में बैठकर के उनके दर्शन करेगा। लेकिन केवल पर-दर्शन से भव का अंत आ सकता नहीं। स्व-दर्शन से ही भव का अंत आता है और यह दर्शन हो सकता है। इसमें बिल्कुल पराधीनता नहीं है, इसमें गुरु के आशीर्वाद की जरूरत नहीं और लायक जीवों पर आशीर्वाद बरसता ही रहता है, पर वह लायक जीव तो जो गुरु कहते हैं, ऐसा गुरु ने फरमाया कि 'हे आत्मा! तू केवल ज्ञाता है, तू कर्ता नहीं'। वह कर्ता के दो भाग नहीं क्योंकि अकर्ता है, इसलिए कर्ता है ही नहीं। इसको करे और इसको न करे, ऐसे दो भाग अकर्ता में नहीं होते, अकर्ता ही

है अथवा ज्ञाता ही है। और ये ज्ञाता, जैसे अकर्ता परिणाम का कर्ता नहीं, परिणाम तो (स्वयं) होता है, ऐसे ज्ञाता भी ज्ञान द्वारा आत्मा को जानता ही रहता है। ऐसा ज्ञाता का स्वरूप है।

अंतर्मुख होकर, जो ज्ञान बहिर्मुख भटकता था इन्द्रियज्ञान उसको वहाँ रोककर, एक दूसरा नया ज्ञान प्रगट होता है, उसमें आत्मा का दर्शन होता है। जिस प्रकार दीपक, उसका जो प्रकाश होता है, तब जिसकी नजर प्रकाश अथवा प्रकाशक दीपक ऊपर नहीं है, उसको ऐसा भासित होता है कि यह (पर पदार्थ) जानने में आता है, यह जानने में आता है, यह जानने में आता है, यह जानने में आता है, यह जानने में आता है। रात में कोई आकर पूछे कि क्या जानने में आता है तुमको? झूला जानने में आता है, सोफासेट जानने में आता है, ये TV (दूरदर्शन) पड़ी है वो जानने में आती है, शास्त्र जानने में आते हैं। दूसरा कुछ जानने में आता है? कि नहीं दूसरा कुछ जानने में आता नहीं।

एक बार एक professor (अध्यापक) ने अपने ५० विद्यार्थियों को रात को परीक्षा के लिए बुलाया और paper (कागज) दिया उनको सबको पचास को। इतना बड़ा hall (हॉल) था स्वाध्याय-मंदिर जैसा। उसमें बहुत सारी वस्तुयें अंदर भरी हुई हैं, अभी, ये सब पटियों के ऊपर शब्द लिखा हुए, बहुत कुछ है, पंखा-वंखा, खचाखच है। इतना paper निकाला कि इस हॉल के अंदर जितनी वस्तुयें हों, जो-जो वस्तुयें हों, उन वस्तुओं को लिखकर दो और आपको आधे घंटे का टाइम देते हैं। ३० मिनट तो बहुत है। फिर भी अगर आपको टाइम कम लगे तो ३० मिनट के बाद मैं और ज्यादा ३० मिनिट दूँगा। पूरा घण्टा (देता हूँ)। पर एक घंटे में आप मुझे paper लिखकर दो।

सभी paper के अंदर इतनी बारीकी से लिखने लगे, एक-एक वस्तु को लिखने लगे। कोई भी वस्तु रह न जाए इतनी सावधानीपूर्वक paper पूरा लिखा। और वह एक paper उनके (अध्यापक के) हाथ में एक घंटे के बाद आया। वो देखते जाएँ और चौकड़ा करते जायें कि इसमें किसी ने ट्यूबलाइट लिखी नहीं। सब पचास ही नापास (हुए)। फिर आजकल के सभी विद्वान-विद्यार्थियों का जरा दिमाग तेज रहता है कि सर! सब नापास नहीं होते, ४९ को नापास करो, सब ५० के ५० कैसे नापास हों? और यदि नापास किया तो उसका कारण बताओ मुझे। पहले बैठ जाओ शांत हो जाओ। आपको नापास का कारण मैं देता हूँ। इतनी सब वस्तएँ जो हैं, ये तुमने किस माध्यम के द्वारा इनको जाना? अँधेरा होता तो आप वस्तु जान नहीं सकते थे, लिख नहीं सकते थे। तो इस hall के अंदर ट्यूबलाइट है, वह लिखने में रह (छूट) गई है। मूल में भूल, ये मूल में भूल कहलाती है। सब खड़े हुये और कान पकड़कर बोले कि, "हमारी बड़ी भूल हो गई है"।

ऐसे अनादिकाल से आत्मा में ज्ञान हो रहा है। आहाहा! और इस ज्ञान में भगवान आत्मा जानने में आ रहा है। फिर भी उसकी दृष्टि ज्ञान ऊपर नहीं है, उसकी दृष्टि ज्ञेय ऊपर है, यह परज्ञेय ऊपर, इसलिए इसको ऐसा ही होता है कि मैं इसको जानता हूँ, इसको जानता हूँ, इसको जानता हूँ, इसको जानता हूँ। जाननहार जानने में आने पर भी, जाननहार मुझे जानने में नहीं आता है - उसका निषेध करता है। स्वयं अपना घात करता है और मुझे यह जानने में आता है, ऐसे इन्द्रियज्ञान उत्पन्न करके और इन्द्रियज्ञान जिसको जानता है उसमें मोह-राग-द्वेष किये बिना रहता ही नहीं।

ज्ञान तो आत्मा को जाननेवाला है और जब ज्ञान आत्मा को प्रसिद्ध करे, तब उसकी दशा में

मोह-राग-द्वेष उत्पन्न ही नहीं होते। आत्मा को जानते कभी भी कषाय उत्पन्न होता ही नहीं, राग उत्पन्न होता ही नहीं परंतु वीतरागभाव प्रगट होता है। जानने में आता है मगर इसको विश्वास नहीं आता कि मेरा आत्मा मुझे जानने में आ रहा है।

अब ये पूरी ट्यूबलाइट ही रह गई। बहुत लिखा। छोटे से छोटी पिन थी न, पड़ी थी न, वो भी लिख डाली उसने कि 'मैंने तो सब लिखा, कि हाँ, अब तो मैं तो pass (उत्तीर्ण) होनेवाला हूँ'। पिन भी लिखी न, कोने में था, इसलिए कुछ बाकी नहीं है। आहाहा! परंतु 'આઠ પાનસેરીમાં મણની ભૂલ (आठ पसेरी में एक मण की भूल)'। कहावत हैं ना? आहाहा! इसके जैसी बड़ी भूल कर दी उसने।

प्रत्येक समय, प्रत्येक जीव में ज्ञान प्रगट होता है और उस ज्ञान में भगवान आत्मा जानने में आता है क्योंकि उस ज्ञान में अर्थात् उपयोग में उपयोग है अर्थात् आत्मा है। उपयोग में उपयोग है। उपयोग में, उपयोग उपयोग बगैर न होय। उपयोग उपयोग बिना नहीं होता।

प्रकाश प्रकाशक बगैर (नहीं होता)। प्रकाश दीपक बगैर नहीं होता। सूर्य का प्रकाश सूर्य बगैर नहीं होता। सूर्य होता, होता और होता ही है। ऐसे इस ज्ञान में भगवान आत्मा निरंतर उपयोग में उपयोग है। परंतु उपयोग में क्रोधादि, कोई बाहर का पदार्थ - कर्म, नोकर्म उपयोग में नहीं है। आहाहा! अतः उपयोग में जो नहीं है वह मुझे जानने में आता नहीं; परंतु जो उपयोग में है वो ही मुझे जानने में आता है। ऐसे जो स्वभाव के सन्मुख आ जाये तो आत्मा का दर्शन हो।

ये भगवान महावीर की दिव्यध्वनि में आज यही ऐसा आया था। आज के दिन दिव्यध्वनि ऐसी छूटी थी। ऐसा सब ज्ञानी जानते हैं कि दिव्यध्वनि में यही आया था कि तेरे ज्ञान में भगवान आत्मा जानने में आता है, उसको जान ले। तेरे भव का अंत आ जायेगा। आहाहा! कोई शास्त्र पढ़ने की जरूरत नहीं, संस्कृत की जरूरत नहीं, व्याकरण की जरूरत नहीं, पैसे-टके की जरूरत नहीं। आहाहा! यह सहज में उसको अंदर में मेरा जाननहार जानने में आता है आत्मा, ऐसे अंदर में पहले ज्ञाता का पक्ष आएगा और वह पक्ष छूटने पर उसको पक्षातिक्रांत होकर अनुभव होगा, दर्शन होगा। आत्मा के दर्शन बिना इस भव का अंत आता नहीं। कुछ खर्च नहीं एक पैसे का, दस पैसे भी भंडार में डालने की जरूरत नहीं पड़े और आत्मज्ञान हो जाए, क्योंकि दस पैसे न हों स्वयं के पास तो (भंडार में) न डाले। आहाहा! पैसे न डाले भंडार में, तो दान न दे। आहाहा! तो भी इस ज्ञान द्वारा आत्मा जानने में आ सकता है, अनुभव में आ सकता है। संज्ञी पंचेन्द्रिय जीव हित-अहित का विचार करके, हेय-उपादेय का विचार करके, ज्ञायक और ज्ञेय का भेदज्ञान करके और ज्ञायक के सन्मुख होकर और ज्ञायक का दर्शन होता है।

इस तरह से भगवान महावीर ने किया और उनकी वाणी में भी यही आया है कि उपयोग में उपयोग है, उपयोग में रागादि नहीं हैं। उपयोग में राग नहीं तो उपयोग में कर्म कहाँ से हो? उपयोग में शरीर कहाँ से हो? उपयोग में दुकान कहाँ से हो? आहाहा! मोटर, बंगला उपयोग में कहाँ है? और ये उपयोग में नहीं, इसलिए वे मोटर, बंगला मुझे जानने में नहीं आते। उसको जाननेवाला इन्द्रियज्ञान है, मैं उसे जानता नहीं। मैं तो मुझे जानता हूँ और इन्द्रियज्ञान पर को जानता है, ऐसा भेदज्ञान करने पर दो विभाग पड़ जाते हैं। अतीन्द्रियज्ञान प्रगट होता है और अतीन्द्रियज्ञान में ज्ञायक भगवान आत्मा जानने

में आये; बाद में उसकी स्वच्छता में लोकालोक भले प्रतिभासित हों, परंतु लोकालोक को ये ज्ञान जानता नहीं है। क्योंकि '**परलक्ष अभावात्**' **अचलं परलक्ष्येऽभावाच्चंचलता-रहितं** (परम अध्यात्म तरंगिणी - समयसार कलश ४२ की टीका), पर के लक्ष से ज्ञान होता ही नहीं। केवली भगवान के ज्ञान में लोकालोक जानने में आते हैं। केवली भगवान लोकालोक को जानते नहीं क्योंकि लोकालोक के सन्मुख होना नहीं पड़ता ज्ञान को। आत्मज्ञान को, आत्मज्ञान में पर-सन्मुख(ता) की जरूरत नहीं और परपदार्थ को जानने के लिए पर-सन्मुख(ता) की जरूरत नहीं। ऐसा-ऐसा (बाहर में) करना नहीं पड़े। यह तो ऐसा (अंदर में) ही है केवलज्ञान में। ऐसे श्रुतज्ञान में भी ऐसा (अंदर में) ही है।

श्रुतज्ञान और केवलज्ञान दोनों समान ही हैं; श्रुतज्ञान में भी भगवान आत्मा जानने में आता है और श्रुतज्ञान की स्वच्छता में भी पदार्थ प्रतिभासित होते हैं। आहाहा! परंतु ये पदार्थ प्रतिभासित होते हैं उन बिम्ब को जानता नहीं और वास्तव में प्रतिबिम्ब को भी जानता नहीं। वह ज्ञेयाकार ज्ञान को जानता नहीं, ज्ञेयों को तो जानता नहीं पर ज्ञेयाकार ज्ञान को भी जानता नहीं है। वह तो ज्ञानाकार ज्ञान को जानता हुआ परिणमित हो जाता है। आहाहा! इसका नाम यह भगवान महावीर की जयंती मनाई कहने में आता है। आत्मदर्शन, यही जयंती मानाना कहलता है। आत्मदर्शन न हो तब तक महावीर का शिष्य ही नहीं है। वह महावीर का शिष्य कहने मात्र है, कथनमात्र है। परंतु महावीर कहते हैं कि उपयोग में उपयोग है, तेरे उपयोग में दुःख नहीं। दुःख नहीं इसलिए आत्मा दुःख को भोगता नहीं। दुःख हो तो भोगे न। आहाहा!

एक बार यह बात कही aerodrome (हवाई-अड्डे) पर जाता था और पंकज, हमारे शान्तिभाई के पुत्र, दुःख की बात मैंने की। आहाहा! अब तक आप राग की बात करते थे तो मैं चमकता नहीं था। आज तो ऐसा कहा कि दुःख ही आत्मा में नहीं है, तो दुःख को भोगवे कहाँ से? क्योंकि उपयोग में दुःख नहीं है ऐसा गाथा में लिखा है। उपयोग में दुःख नहीं है, क्रोध और क्रोध का फल उपयोग में नहीं, वैसे उपयोग द्रव्य बिना नहीं है, उपयोग में उपयोग है। ज्ञायक भगवान आत्मा जानने में आता है। आहाहा! ये उपयोग ऐसा है कि इसमें पूरा आत्मा जानने में आता है इसलिए उसमें पर का जानना प्रवेश कर सकता नहीं। परपदार्थ आत्म-सन्मुख आते नहीं और आत्मा पर-सन्मुख होता नहीं और ज्ञान में ज्ञायक जानने में आए बिना रहता नहीं। आहाहा! उसने भगवान महावीर की जयंती मनाई ऐसा कहने में आता है।

मुमुक्षुः मूल रहस्य साहेब।

पू. लालचंदभाईः मूल रहस्य है। आज बड़ा दिन है ना? मांगलिक! आज जन्म हुआ। जन्म कल्याणक मनाने के लिए इंद्र आते हैं। आहाहा! इंद्र आते हैं हों! उसमें इतने मेरु पर्वत तक ऊपर ले जाते हैं, अभिषेक के लिए। आहाहा! बड़े कलश, कलशों का कोई पार नहीं, इतने बड़ा कलश हों! उसमें किसी देव को आशंका हुई कि इतने बड़े कलश इतने (छोटे) बालक के ऊपर, नाजुक बालक के ऊपर डालते हैं, ये सहन कैसे होंगे? आहाहा! अवधिज्ञान में जाना उन्होंने (बाल तीर्थंकर ने); ऐसे, ऐसे जरा अँगूठे से (भूमि) दबाया, हलचल मच गई। किसने ये आशंका की? वह देव कहे मैंने की। आहाहा! उनके बल की कोई बात नहीं, वासुदेव, प्रतिवासुदेव, चक्रवर्ती का बल उनकी तुलना में है

नहीं। ऐसा तो शरीर का बल, आत्मिक बल तो अलौकिक। आहाहा! यह तो पुद्गल का बल है। पुद्गल में भी वीर्य है, पुद्गल में भी शक्ति है। आहाहा! ऐसे भगवान महावीर हुए और आज के दिन हम भगवान महावीर की जयंती मनाते हैं क्योंकि (वे) अपने उपकारी हैं। यह शासन भगवान महावीर का चलता है और यहाँ प्रतिमा भी भगवान महावीर की है। आहाहा! यहाँ की सोसाइटी का नाम भी महावीर नगर। आहाहा!

ये महावीर के शिष्य हैं सब। महावीर ने कहा कि एक सड़े हुए तिनके के दो टुकड़े करने की तेरे में ताकत नहीं। यह पलक को तू हिलाता नहीं, हिलती हुई पलक को हिला सकते नहीं और न हिले, उसे हिला सकता नहीं; और हिलती पलक को इन्द्रियज्ञान जानता है, आत्मा उसको जानता नहीं। इन्द्रियज्ञान जाने तो जाने, मेरा ये विषय नहीं है, ये (तो) चक्षु इन्द्रिय का विषय है। मेरा विषय तो मेरा आत्मा है क्योंकि उपयोग में उपयोग है। उपयोग को मैंने अंदर में घुमाया, देखा, बहुत खोज की परंतु मेरे ज्ञान में भगवान आत्मा के सिवा मुझे कुछ दिखता नहीं। भावकर्म अंदर में नहीं इसलिए मुझे दिखते नहीं। आठकर्म अंदर में नहीं इसलिए दिखते नहीं। शरीर अंदर में नहीं इसलिए मुझे दिखता नहीं। ऐसा भेदज्ञान करने पर उसको आत्म-साक्षात्कार, अनुभव, सम्यग्दर्शन हो जाता है। आहाहा! बड़ा दिन है ना आज का तो। आहाहा! भगवान महावीर का शासन है। आहाहा!

उसमें आत्मदर्शन कैसे हो, उसकी विधि इसमें है संवर अधिकार में। संवर कहो कि आत्मदर्शन कहो एक ही बात है। पर के दर्शन करते-करते अनंतकाल गया। आहाहा! भव का अंत आया नहीं। लेकिन पर को मैं जानता ही नहीं, जाननहार जानने में आता है - ऐसे ज्ञाता के पक्ष में आते ही उस पक्ष का विकल्प छूटकर और ज्ञायक भगवान प्रत्यक्ष, आहाहा! दर्शन देता है और ये दर्शन लेता है। उपयोग दर्शन लेता है और उपयोग दर्शन देता है। पहला उपयोग परिणाम और दूसरा उपयोग द्रव्य। द्रव्य देता है और उपयोग उसमें लेता है। अंदर-अंदर में लेना-देना कर लेता है। आहाहा! बाहर की जरूरत नहीं।

एक बार यहाँ राजकोट में बनाव बना। रतिभाई घीया हैं, secretary (सचिव)। हमारे घर पर आये थे और चर्चा चलती थी। उसमें स्वयं बोले कि ये गुरुदेव इतनी प्रशंसा करते हैं आत्मा की, प्रशंसा करते थकते ही नहीं (हैं), तो ऐसा यह ज्ञायक आत्मा चौबीसों घंटे करता क्या होगा? ऐसा प्रश्न हुआ। इतनी सारी प्रशंसा करें महापदार्थ की, तो ये चौबीस घंटे आत्मा करता क्या होगा? ऐसा प्रश्न पूछा। मैंने कहा ये दर्शन देने का काम निरंतर करता है। लेकिन किसको? कि (जो) लेता है, उसको। यहाँ भगवान महावीर विराजमान हैं। जो प्रतिमा के पास आवे, उसको दर्शन दें ना? कि चलते-फिरते मनुष्य को बुलाते होंगे? भगवान बुलातें हैं किसी को? आहाहा! भगवान किसी को बुलाते नहीं। जिसको गरज हो वह भगवान के पास जाये और जिसको गरज हो वह इस (अपने) भगवान के पास जाये। तो दर्शन देने के बिना रहता नहीं, मुख नहीं फेरता वो। अनंतकाल से तूने मेरा अपमान किया और बाहर भटकता था, अब मैं दर्शन नहीं दूँगा (ऐसे) मुख फेरता नहीं। आहाहा! आओ रे आओ परिणती! तेरी भूल मिट गई और मेरा दर्शन किया और तुझे सम्यग्दर्शन हो गया, भव का अन्त आ गया, जा! आहाहा! एकबार दर्शन हो जाये, अल्पकाल में उसका मोक्ष हो, हो और हो (ही)। इसके जैसा कोई सरल रास्ता

नहीं। धर्म, सरल से सरल (काम) करना हो तो धर्म है। अधर्म तो, आत्मा ऊपर जबरदस्ती करता है तब अधर्म होता है। राग करना, वो आत्मा का स्वभाव नहीं बल्कि वह बलात्कार करता है, आत्मा का अपमान करता है तब राग और द्वेष और मोह उत्पन्न होते हैं। हम यहाँ तक आये हैं। प्रथम परिच्छेद चलता है।

परमार्थभूत आधारआधेयसम्बन्ध नहीं है। यहाँ तक आए हैं कि आत्मा और राग को आधार-आधेय संबंध नहीं। आत्मा के आधार से राग होता नहीं और राग के आधार से आत्मा नहीं। दोनों सत्ता न्यारी-न्यारी, अलग-अलग हैं। आहाहा!

मुमुक्षु: थोड़ा हिंदी में लो न, हिंदी में?

पू. लालचंदभाई: हाँ ठीक! मैं भूल जाता (हूँ), जरा मेरे को याद कराना। कोई परेशानी नहीं। दिल्ली से आये हैं बोलो! आहाहा! दस-पंद्रह जन आये हैं दिल्ली से। आहाहा! अरे भाई! यह तो कोई अलौकिक कुंदकुंदाचार्य भगवान का शास्त्र समयसार (है)। कुंदकुंद की वाणी कान ऊपर आये, तो पुण्य का ढेर हो तब तो वाणी कान पर आती है। आहाहा! और इसको समझने का प्रयत्न करे, निर्णय करे, निर्णय के बाद अनुभव करे तो काम हो जाये। सिर्फ सुनने से काम नहीं होता है। उसको निर्णय करना पड़ेगा कि ज्ञान में ज्ञायक है कि ज्ञान में दुःख है। आहाहा! ज्ञान में दुःख नहीं। दुःख दुःख में है और ज्ञान ज्ञान में है।

मुमुक्षु: हिंदी लो।

पू. लालचंदभाई: हैं? अच्छा! दुःख दुःख में है और ज्ञान ज्ञान में है। जरा टोक देना (हिन्दी बोलने के लिए)।

कारण है कि यहाँ गुजराती area (क्षेत्र) में मैं आया हूँ न इसलिए गुजराती ज्यादा आ जाती है। बाकी देवलाली में तो किसी समय हिंदी भी (चलती है)। आहाहा! अरे! कहाँ हिंदी और कहाँ गुजराती! सब भगवान आत्मा हैं। आहाहा! भाषा का भेद है लेकिन भाव में कोई भेद है नहीं।

जो निगोद में सो ही मुझमें, सो ही मोक्ष मँझार।
निश्चयभेद कछू भी नाहीं, भेद गिनै संसार॥

(पंडित बुधजन जी द्वारा भजन - हमको कछु भय ना रे)

आहाहा! इस तरह से एक दूसरी बात आई कि पुण्य और पाप,

मुमुक्षु: हिन्दी।

पू. लालचंदभाई: हाँ, हिन्दी में, अच्छा! ये भी हिन्दी है न? तो समर्थन देवे न! पुण्य और पाप दो समकक्षी पाप हैं। उनमें भेद करता है कि पुण्य ठीक और पाप अठीक वो घोर संसार में भटकता है, घोर संसार में हिंडन्ती! आहाहा! क्या कहा? कि पुण्य और पाप ये भावकर्म हैं, एक जाति के कर्म हैं, कषाय ही हैं। इस कषाय में अंतर नहीं है। पुण्य भी कषाय और पाप भी कषाय, उसमें जो अंतर करता है, तो भेद करता है तो पुण्य ठीक लगता है और पाप अठीक लगता है, पाप त्याज्य है, पाप त्याज्य है और पुण्य उपादेय है - ऐसा पुण्य के अंदर उपादेयबुद्धि जो आ गई और पुण्य के फल की चाहना हुई, तो ऐसा जीव घोर संसार में भटकता है। आहाहा! कुंदकुंद भगवान की मूल गाथा प्रवचनसार में ७७

नम्बर की गाथा है। आहाहा! घोर संसार में भटकता है। आहाहा!

मुमुक्षु: ७७ गाथा (दीवाल) पर लिखी है।

नहि मानतो-ए रीत पुण्ये पापमां न विशेष छे,
ते मोहथी आच्छन्न घोर अपार संसारे भमे ॥७७॥

पू. लालचंदभाई: अपार! उसका पार नहीं आता है। भूल कितनी कही? कि पुण्य और पाप (दोनों) एक अशुद्ध परिणाम हैं, कषाय हैं, कषाय में अंतर नहीं है, दोनों ही आकुलता को उत्पन्न करनेवाला है, दोनों ही बंध के कारण हैं, दोनों ही विभाव हैं, दोनों ही समकक्षी त्याज्य हैं तो भी वह भेद करता है कि पुण्य ठीक और पाप अठीक। और कोई पुण्य करता है तो वो प्रशंसा करता है, ओहोहो! अच्छा! उसने शुभभाव किया, अच्छा किया; दान दिया, तप किया, यात्रा निकाली। अरे भाई! एक जाति का भाव है, पुण्य और पाप की जाति एक है। निश्चय से भेद नहीं है; व्यवहार से भेद किया तो भी, व्यवहार तो अभूतार्थ है, उसको सत्यार्थ नहीं मानना। पुण्य और पाप समकक्षी बंध का कारण हैं।

लोहे की बेड़ी भी बाँधती है जीव को, और सोने की बेड़ी भी (बाँधती है) (समयसार गाथा १४६)। किसी को कहो कि आपको हमको बाँधना है मगर लोहे की बेड़ी से नहीं बाँधूगा, सोने की बेड़ी से बाँधूगा। तो कहे, न भाईसाहब! मेरे को सोने की बेड़ी से बंधना नहीं है। ऐसे पुण्य की मिठास है जीव को। आहाहा! पुण्य की रूचि जीव को मारती है। पुण्य का परिणाम नहीं मारता है, पुण्य की रुचि जीव को मारती है। पुण्यभाव तो होता है आर्यजीव को। होता है मगर वो ठीक है और पापभाव अठीक है - ऐसे व्यवहारनय से दो भेद हैं। और व्यवहारनय से दो भेद को दो भेद मानकर जो सदाचार का उपदेश देता है (कि) 'वो पाप का परिणाम तो अनाचार है, ये सदाचार है।' नहीं! ये उपदेश बिल्कुल ठीक नहीं है। आहाहा! शुभ और अशुभ समकक्षी पाप हैं।

पाप को तो सब कोई पाप कहें मगर पुण्य को कोई पाप कहे तो विरला है - ऐसा (श्रीमद् योगन्द्रदेव विरचित योगसर गाथा ७१) पाठ है।

जयसेनाचार्य भगवान की टीका है समयसार (गाथा १६१-१६३) की, उसमें ऐसा लिखा है। पुण्य-पाप अधिकार पूरा हो गया। टीका करते-करते टीका पूरी हो गई। आखिर में लिखा कि पाप अधिकार की पूर्णता हुई, समाप्त। तो शिष्य ने कहा कि 'पाप अधिकार तो नहीं है; आप क्यों लिखते हैं कि पाप अधिकार पूरा हो गया? पुण्य-तत्त्व तो है न उसमें। पुण्य और पाप दो भेद हैं न?' (जयसेनाचार्य) 'कि पुण्य भी पाप ही है। पुण्य की उत्पत्ति, स्वरूप से च्युत होता है जीव। पाँच महाव्रत का परिणाम व्यवहारनय से पुण्य है, निश्चयनय से पाप है।' हाय! हाय! भावलिंगी संत का? कि हाँ! व्यवहारनय से शुभभाव पुण्य कहा जाता है और निश्चयनय से तो वो बंध का कारण है इसलिए पाप ही है। पाप को तो सब कोई पाप कहें मगर पुण्य को पाप कहनेवाला विरला कोई होता है। आहाहा!

क्या? तो पाप ही करना? पुण्य ठीक नहीं है तो अभी पाप करेगा बस, पुण्य छोड़ देगा। अरे! करेगा, नहीं करेगा उसके कालक्रम में पुण्य-पाप आनेवाला हो आयेगा ही आयेगा। तू कहाँ उसका कर्ता है? वो तो स्वकाल में पाप भी आता है और स्वकाल में पुण्य भी आता है मगर उसका भेद मत कर; उसको अभेद तरीके से देख ले कि कषाय की जाति है। वो चंडालिनी के गर्भ में से उत्पन्न हुए दो

बालक हैं (समयसार कलश १०१)। एक ब्राह्मण के यहाँ बड़ा हो और एक उसके यहाँ बड़ा हो। ब्राह्मण के यहाँ बड़ा हो उसको अभिमान हो जाता है कि दारू नहीं पीते हम, हम दारू का नाम ही नहीं लेते पुण्य-तत्त्व कहता है; और पाप तो स्नान करे उससे, यानि पिये दारू। कहते हैं जाति दोनों की एक जाति है, अज्ञान में से उत्पन्न हुए पुण्य-पाप के परिणाम हैं, आत्मा में से उत्पन्न न हों। आत्मा में से आत्मा का ज्ञान उत्पन्न होता है; पुण्य-पाप आत्मा से उत्पन्न नहीं हो सकते क्योंकि उपयोग में पुण्य-पाप नहीं। नहीं इसलिए उसका कर्ता नहीं, नहीं इसलिए उसका जाननेवाला (नहीं है), जानता नहीं, वह तो आत्मा को जानता है। आहाहा! ऐसे तू जाननहार को एक बार जान। जान तो सही। परपदार्थ को जानते अनंतकाल गया। ये बात करते हैं।

और जैसे ज्ञानका स्वरूप जाननक्रिया है ज्ञान का स्वरूप जैसे जानने की क्रिया है, ज्ञान अर्थात् आत्मा। उसका स्वरूप जानने की क्रिया है, **उसीप्रकार** जानने की क्रिया भी आत्मा करे और क्रोध की क्रिया भी आत्मा करे, **(ज्ञानका स्वरूप) क्रोधादिक्रिया भी हो,** ऐसा, ऐसा बिल्कुल है नहीं। आत्मा ज्ञान की क्रिया करे और क्रोध की क्रिया नहीं करे। नहीं करता है क्रोध की क्रिया, ज्ञान की क्रिया करता है। क्रोध ज्ञान में प्रतिभासित भले हो मगर उसका कर्ता बनता नहीं है। ज्ञान का कर्ता होता है और क्रोध तो ज्ञान में परज्ञेय तरीके जानने में आता है, ज्ञेय है। ज्ञान क्रिया में क्रोध की क्रिया नहीं है और क्रोध की क्रिया में ज्ञान की क्रिया नहीं है।

देखो! यह कलश-टीका है, कलश-टीका। उसमें ९७ नम्बर का श्लोक है, ९७। पैसा कमाने के चक्कर में कहाँ किसी को पड़ी! आहाहा! पैसा साथ में आनेवाला नहीं है, ये बात नक्की है, guarantee (पक्का)। guarantee है कि नहीं, पैसा आता है, साथ में? आयेगा? जो आनेवाला नहीं है, उसके लिए २४ घंटा मजदूरी करता है और जो साथ में आता है ज्ञान उसके लिए प्रमाद करता है। आहाहा! देखो! ९७ नम्बर का एक श्लोक है। कलश-टीका राजमलजी साहब, अनुभवी हो गए, ४०० साल पहले राजमल जी। कवि राजमल जी जैन-धर्म के मर्मी। आहाहा! बनारसीदास हो गए न उनको ये (राजमल जी) निमित्त हुये। कलश-टीका के निमित्त से उनको सम्यग्दर्शन हो गया, बनारसीदासजी को।

सूक्ष्म द्रव्यस्वरूप दृष्टिसे ज्ञानगुण और मिथ्यात्व-रागादिरूप चिक्कणता इनमें एकत्वपना नहीं है क्या कहा? ज्ञानगुण यानि उपयोग जिसमें जाननक्रिया होती है और बाजू में, साथ में मिथ्यात्व का परिणाम विभाव-विकार भी होता है अज्ञानी को। अज्ञानी की बात बताते हैं कि ज्ञानक्रिया भी प्रगट होती है और अनादिकाल से राग मेरा है और देह मेरा है, ऐसा श्रद्धा का विपरीत - मिथ्यात्व का परिणाम, विकार, विभाव, कषाय प्रगट होता है। तो भी ज्ञान की क्रिया के साथ मिथ्यात्व की क्रिया एकमेक होती नहीं है। इतनी तो भिन्नता मिथ्यादृष्टि को साथ में मिथ्यात्व और उपयोग सामान्य, सामान्य उपयोग और मिथ्यात्व दोनों भिन्न-भिन्न हैं। आहाहा! शुद्धोपयोग होता है तब तो मिथ्यात्व रहता ही नहीं है। क्या कहा? जब शुद्धोपयोग-आत्मदर्शन होता है, सम्यग्दर्शन, तब तो मिथ्यात्व का परिणाम है ही नहीं। मगर मिथ्यात्व का परिणाम जब है तब भी ज्ञान से भिन्न रहता है वो; एकत्व नहीं होता है उसमें, इसमें लिखा है।

सूक्ष्म द्रव्यस्वरूप दृष्टिसे ज्ञानगुण गुण यानि ज्ञप्ति क्रिया। जानने की क्रिया होती है ना उसका नाम गुण है। राग को जब दोष कहते हैं तो ज्ञान को गुण कहा जाता है, गुण का अर्थ पर्याय है ज्ञप्ति, संस्कृत में है ज्ञप्ति, जानने की क्रिया। ज्ञप्ति यानि जानन-क्रिया होती है आत्मा में और मिथ्यात्व की क्रिया विभाव भी होता है। वो दोनों अलग-अलग हैं। **मिथ्यात्व-रागादिरूप चिक्कणता इनमें एकत्वपना नहीं है।** स्वभाव और विभाव कभी एक होते नहीं है। चाँदी और सोना कभी एक होते नहीं है।

भावार्थ इस प्रकार है - संसार-अवस्था [रूप] मिथ्यादृष्टि जीवके देखो! मिथ्यादृष्टि है, अज्ञानी है, आत्मा को जानता नहीं है। उस अवस्था में भी राग और ज्ञान एकमेक होते नहीं हैं; भिन्न-भिन्न सत्ता, दोनों की भिन्न-भिन्न, न्यारी-न्यारी है, प्रदेश-भेद है, आहाहा! क्षेत्र-भेद है, भाव-भेद है, काल-भेद है। आहाहा!

संसार-अवस्था [रूप] मिथ्यादृष्टि जीवके ज्ञानगुण भी है ज्ञप्ति-क्रिया, उपयोग, जानने की क्रिया भी प्रगट होती है **और रागादिचिक्कणता भी है,** रागादि का चिकनापन भी है। संसार है ना? संसारी जीव लिया है, मोक्षमार्गी या मोक्ष नहीं। जो आत्मा को जानता नहीं है बिल्कुल और पुण्य से धर्म मानता है, शुभभाव से धर्म मानता है, ऐसा मिथ्यादृष्टि है। हाथ मैं हिलाता हूँ, मिथ्यादृष्टि है, ऐसा मिथ्यादृष्टि है। मैं भाषा बोलता हूँ, आहाहा! मिथ्यादृष्टि है। भाषा का करनेवाला तो पुद्गल है, हाथ को हिलानेवाला तो पुद्गल है; आत्मा तो जाननेवाला है, करनेवाला नहीं है। स्वभाव से ही अकर्ता है। स्वभाव से अकर्ता है। आहाहा! अनादि-अनंत अकर्ता है, अनादि-अनंत ज्ञाता ही है। उसको, ज्ञाता को कर्ता माना उसका नाम मिथ्यात्व है। ऐसी मिथ्यात्व अवस्था में भी, देखो! भेदज्ञान करने का मौका है अभी, अभी मौका है। यदि मन गया और संज्ञी पंचेन्द्रिय मनुष्यपना गया और एक-इन्द्रिय, दो-इन्द्रिय, तीन-इन्द्रिय, चार-इन्द्रिय में चला गया, आहाहा! तो बाजी हाथ में से निकल जायेगी। फिर अवसर कब आएगा? आहाहा! अनंत कल्पकाल जाने के बाद तो ऐसा मनुष्य भव मिलता है। आहाहा! बीस कोड़ा-कोड़ी सागर का एक कल्प, ऐसे अनंत-अनंत कल्प जाएँ तो मनुष्यपना मिले। उसमें सच्चे देव-शास्त्र-गुरु मिलना भी दुर्लभ, उसमें आत्मा को समझने की रुचि जागना बहुत दुर्लभ, निर्णय करना तो उससे भी दुर्लभ और निर्णय करके अंदर में अनुभव करना ये तो... आहाहा!

मिथ्यादृष्टि जीवके ज्ञानगुण भी है और रागादि चिक्कणता भी है, 'छे' के बदले 'है', तो हिंदी हो गई। 'छे' तो गुजराती और 'है' तो हिंदी, इतना फेर है।

कर्मबंध होता है जीव को, मिथ्यादृष्टि को, **सो रागादि सचिक्कणता से होता है।** राग का चिकनापन जैसे तेल का मर्दन करे तो रज चिपकती है (समयसार २३७-२४१)। तेल का मर्दन न करे तो अखाड़े में धूल चिपके नहीं, धूल उड़े, धूल चिपके नहीं (समयसार २४२-२४६)। इसलिए जो राग है, परिणाम में राग है तो चिकनापन है। तो कहते हैं कि **रागादिचिक्कणता भी है, कर्मबंध होता है सो रागादि सचिक्कणता से होता है।** आस्रव से कर्मबंध होता है, राग-द्वेष-मोह वो कषायभाव है उससे नया कर्म आता है, बंधता है। **ज्ञानगुणके परिणमनसे नहीं होता**, यानि जो उपयोग जानने की क्रिया होती है, मिथ्यादृष्टि की बात चलती है, शुद्धोपयोग है नहीं। शुद्धोपयोग हो, तो-तो मिथ्यात्व नहीं रहता

है, मगर शुद्धोपयोग नहीं, उपयोग है। उपयोग - वह आत्मा की जाति का अंश है; जैसे आत्मा ज्ञाता है ऐसे उपयोग भी ज्ञाता है, जानन-क्रिया है उसमें, वो स्वभाव का अंश है।

सूर्य का प्रकाश है न, वो प्रकाश सूर्य का अंश है। अँधेरा, अँधेरा सूर्य का अंश होता है? (नहीं!) नहीं? आहाहा! प्रकाश सूर्य का अंश है। ऐसे राग अँधकार है, वो आत्मा की पर्याय भी नहीं है, आत्मा का परिणाम नहीं है, जाति अलग है, वह जड़ की जाति है। अँधकारमय राग स्वभाव है, शुभाशुभभाव। मगर ज्ञानगुण का परिणमन जानना, जानना, जानना, जानना, जानना, जानना, जानना चालू है। जानना, जानना चालू है; अकेला दुःख होता है, ऐसा नहीं।

एक बार ऐसा हुआ, एक भाई बीमार पड़ा, तो डॉक्टर को बुलाओ। तो डॉक्टर आया तो डॉक्टर साहब ने पूछा कि, भाईसाहब! आपको क्या तकलीफ है? तो उसने बताया कि कुछ तकलीफ नहीं है, मैं जानता नहीं हूँ, तकलीफ तो है मगर मैं जानता नहीं हूँ। अच्छा! तो वो बैग उठाकर चला, डॉक्टर तो। तेरे को खबर नहीं है कि कहाँ दर्द है और किस बात के लिए मेरे को बुलाया? पेट में दुःखता है, छाती में दुःखता है, माथे में दुःखता है, कमर में दुःखता है, क्या है तू जानता नहीं है? कि साहब! मैं नहीं जानता हूँ। अच्छा! तो उसने बैग उठाया कि अच्छा! चलो मेरा काम नहीं है। तेरे को क्या हुआ तो मैं दवा कैसे दूँ? किस दर्द की दवा दूँ? तो नहीं-नहीं साहब! बैठो, बैठो! मेरे को पेट में दुःखता है। तो पेट दुःखता है ये किसने जाना? दुःख ने दुःख को जाना कि उपयोग ने जाना? (मुमुक्षु: उपयोग ने।) उपयोग ने जाना कि नहीं? उपयोग ने जान लिया कि ये दुःख है, दुःख है। दुःख को उपयोग ने जाना, तो उपयोग दुःखरूप हो तो जानने की क्रिया नहीं होती है। (तब) तो उपयोग जड़ हो जाता है। ख्याल आया शांतिसागर जी? आहाहा! ये मुनि होनेवाले थे पहले, शांतिभाई, शांतिसागर दिल्ली के हैं। उनको पहले बहुत वैराग्य आया था। बच गए। हें? बच गए, सम्यग्दर्शन के पहले चारित्र होता नहीं है।

क्या कहा? कि जो दुःख है और उपयोग है, वो अलग-अलग चीज है। अपने अनुभव से सिद्ध होती है। जो ज्ञानोपयोग, जानन-क्रिया दुःखमय हो जावे तो मेरे पेट में दुःखता है और माथा दुःखता नहीं है, यह भेद किसने किया? सिर दुःखता है? कि न साहेब। पैर दुःखता है? कि न साहेब। पेट में दुःखता है। यह भेद किसने जाना? भेद को दुख नहीं जानता है। वो जानन-क्रिया ज्ञान में प्रगट होती है, वो जानती है। आहाहा! इतनी तो बाजी हाथ में है। संज्ञी पंचेन्द्रिय(पना) गया, मनुष्य भव गया, तो खलास (खत्म)। आहाहा! मुश्किल है मामला।

ज्ञानगुणके परिणमनसे नहीं होता बंध (नहीं) होता है। ये ज्ञानस्वभाव है, स्वभाव का अंश है, उससे बंध होता नहीं है, राग से बंध होता है। **ऐसा वस्तुका स्वरूप है**। यानि ज्ञान भी होता है और राग भी होता है मगर राग और ज्ञान एक पदार्थ नहीं हैं, आहाहा! दो पदार्थ भिन्न-भिन्न हैं, दो भाव भिन्न-भिन्न हैं। जो उपयोग में दुःख आ गया हो तो-तो वो उपयोग जाने ही नहीं कि वहाँ दुःख है और वहाँ दुःख नहीं है। इसलिए दुःख और उपयोग, अनुभव से भिन्न-भिन्न हैं। अज्ञानी भी विचार करे न कि पेट में दुःखता है और सिर दुःखता नहीं है, ये अंतर किसने जाना? उपयोग ने, ज्ञान ने जान लिया। आहाहा!

अरे! ज्ञान जो एक समय की पर्याय है, उसके पक्ष में आये तो ही काम हो जाये। राग का पक्ष

छूटे और ये ज्ञान का अंश है, वो आत्मा का अंश है। ज्ञान मेरे को जानने में आता है। तो ज्ञान जानने में आता है, तो ज्ञान कहाँ से आता है? कि आत्मा में से आता है। तो इस अंश पर से अंशी पर चला जाता है। रस्सी पकड़कर चला जाता है। आहाहा!

ऐसे दीपचंद जी हो गये। उन्होंने कहा कि ज्ञान प्रगट होता है न, तो तू विचार कर कि ज्ञान कहाँ से आता है? इसकी खोज कर ले। तो ज्ञान जहाँ से आता है, वहाँ तू जान, तो आत्मा हाथ में आ जायेगा। राग के ऊपर दृष्टि देने से, दुःख पर दृष्टि देने से आत्मा हाथ में आता नहीं है, क्योंकि वो तो जड़ है, अचेतन है। राग-द्वेष, सुख-दुःख उसमें चेतन की निशानी नहीं है, पुद्गल की निशानी है, उसमें चेतन की निशानी नहीं है। आता है न?

मुमुक्षु: राग-द्वेष पुद्गल की संपत्ति, उसमें नहीं चैतन्य-निशानी।

पू. लालचंदभाई: आहाहा! राग-द्वेष पुद्गल की संपत्ति, उसमें नहीं चेतन की निशानी, चेतन का लक्षण नहीं है। आहाहा! यह दया, दान, करुणा, कोमलता के परिणाम में चेतन का लक्षण नहीं है, लक्षण-भेद से भेद है। उसको अभी.....उससे धर्म हुआ, शुभभाव करते-करते मोक्ष हो जायेगा, आहाहा! बड़ी भूल है। आत्मा का ज्ञान करते-करते मोक्ष होता है। आत्मा का ज्ञान करे तो सम्यग्दर्शन, चालू रखे तो मोक्ष। चालू रखे, continue (जारी) तो दो घड़ी में, आहाहा! श्रेणी आती है। ये काल नहीं है श्रेणी का। चौथे काल में तो दो घड़ी अंदर में जम जाते हैं, साधक मुनिराज, हों! आहाहा! गृहस्थ को श्रेणी नहीं आती है। आहाहा! गृहस्थ को सम्यग्दर्शन-ज्ञान होता है, थोड़ा चारित्र भी होता है। इस काल में छठवें-सातवें गुणस्थान तक सच्चा मुनि भी बन सकता है, इस काल में; नहीं बन सकता ऐसा नहीं है। मगर सम्यग्दर्शन के बिना मुनिदशा होती नहीं। आहाहा! आज का दिन तो बड़ा मांगलिक दिन है। आहाहा! धर्मपिता का जन्म, सर्वज्ञ भगवान अपने धर्मपिता, उनका जन्मदिन है आज का। आहाहा!

और जैसे ज्ञानका स्वरूप जाननक्रिया है ज्ञान में ज्ञप्ति क्रिया, जानन-क्रिया तो होती है मगर ज्ञान में राग की क्रिया होती नहीं और राग की क्रिया में जानन-क्रिया होती नहीं है। एक जड़ और दूसरा चेतन। आहाहा! शुभभाव जड़ है, भगवान की पूजा का जो राग आता है, वो जड़-अचेतन है, उसमें चेतन की निशानी नहीं है। आता जरूर है, साधक को आता है, गृहस्थ को भी पूजा का भाव, शुभराग आता है मगर वो आत्मा से भिन्न है। आहाहा! उसमें आत्मा का लक्षण नहीं है, पुद्गल की निशानी है उसमें। पुद्गल के आश्रय से होता है, इसलिए उसको पुद्गल कहा जाता है।

और जैसे ज्ञानका स्वरूप जाननक्रिया है जानने की क्रिया है **उसीप्रकार (ज्ञानका स्वरूप) क्रोधादिक्रिया भी हो, अथवा जैसे क्रोधादिका स्वरूप क्रोधादिक्रिया है उसीप्रकार (क्रोधादिका स्वरूप) जाननक्रिया भी हो ऐसा किसी भी प्रकारसे स्थापित नहीं किया जा सकता;**

क्रोध, क्रोध में है, ज्ञान ज्ञान में है; जानन-क्रिया में क्रोध नहीं, क्रोध की क्रिया में जानन-क्रिया नहीं। भेदज्ञान चलता है, भेदज्ञान। आहाहा! ऊपर (शीर्षक में) आया था कि संवर की उत्पत्ति का कारण **भेदविज्ञान है उसकी प्रशंसा कर**ने में आता है, करने में आता है। आहाहा!

क्योंकि अभी कारण बताते हैं **क्योंकि जाननक्रिया** जानने की क्रिया **और क्रोधादिक्रिया** राग

की क्रिया; राग-द्वेष-मोह, दया, दान, करुणा, कोमलता के परिणाम व्रत, अव्रत, व्रत का भाव और अव्रत का भाव, ये जड़-अचेतन है। अरे! पाँच महाव्रत का भाव मुनिराज पालन करते हैं? पालन नहीं करते हैं, उसको जानते हैं, उसको पालते नहीं हैं। आता हैं उसको (जानते हैं), पररूप जानते हैं, हेयरूप जानते हैं, उपादेय जानते नहीं। उपादेय तो एक शुद्धात्मा है। प्रगट करने के लिए संवर, निर्जरा उपादेय है। हेय, पाँचों ही महाव्रत हेय हैं। तो क्या (फिर) करना (या) नहीं करना? छोड़ना? कि बिल्कुल करने की (या) नहीं करने की बात नहीं है; होता है, उसको जानो। आहाहा! वो सब अनंतगुण की अनंत पर्यायें होने योग्य होती हैं और जाननहार जानने में आया करता है।

क्रियायें होने योग्य होती हैं, परिणाम की क्रिया होने योग्य होती रहती है और जाननहार जानने में आता है। इसकी हिंदी क्या है? बोलो। हिन्दी बताओ भाईसाहब को। होने योग्य होता है और जाननहार जानने में आता है। होने योग्य होता है, इसका अर्थ मैं करनेवाला नहीं हूँ। परिणाम होता है, परिणाम तो चलता है, होने योग्य होता है। नहीं होने योग्य भी नहीं होता है और आत्मा कर्ता भी नहीं है। उस क्रिया रोकनेवाला भी कोई नहीं है और क्रिया को जाननेवाला मैं नहीं हूँ। आहाहा! मैं तो जाननहार को जानता हूँ।

होने योग्य होता है और जाननहार जानने में आता है - ऐसी स्थिति में जरा विचार लंबा चले और स्थिर हो जाये थोड़े time (समय), तो अनुभव हो जाता है, दर्शन। आज का मंगल दिन है न? आहाहा! भगवान का दर्शन होता है। भगवान का दर्शन होता है इस काल में। हो! कौन से भगवान? कि (अपने) ज्ञायक देवाधिदेव शुद्ध चैतन्य परमात्मा, शुद्ध है, ज्ञान-आनंद से भरा हुआ है लबालब। सुखमय आत्मा है, ऐसा दर्शन (होता है), दर्शन होता है तो परिणाम भी सुखमय हो जाता है, दुःख चला जाता है, इसका नाम संवरतत्त्व कहा जाता है। आत्मा की पर्याय में आनंद आवे उसका नाम संवर है; और आत्मा के परिणाम में आकुलता दुःख होता है उसका नाम आस्रवतत्त्व है। समझे? लक्षण है। संवर, आस्रव का लक्षण क्या? कि जिस परिणाम में दुःख का वेदन आ जावे उसका नाम आस्रवतत्त्व और जो परिणाम आत्माभिमुख हुआ, उसमें अनाकुल आनंद आया परिणाम में, उसका नाम संवरतत्त्व है, उसका नाम सामायिक है, उसका नाम प्रतिक्रमण है, प्रत्याख्यान, आलोचना - ये सब शुद्धोपयोग के ही नाम हैं। आहाहा!

क्योंकि जाननक्रिया और क्रोधादिक्रिया भिन्न-भिन्न स्वभावसे प्रकाशित होती हैं ये तो दो तत्त्व भिन्न हैं। आहाहा! एक जीव तत्त्व भिन्न है - एक ज्ञानोपयोग सामान्य भिन्न है और राग भी भिन्न है। आहाहा! **और इस भाँति स्वभावोंके भिन्न होनेसे वस्तुएँ भिन्न ही हैं।** स्वभाव भिन्न है इसलिए वस्तु भी भिन्न है। **इसप्रकार ज्ञान तथा अज्ञानमें** आत्मा को और अज्ञान को **(क्रोधादिकमें) आधाराधेयत्व नहीं है।** नहीं है, आत्मा के आधार से क्रोध नहीं और क्रोध के आधार से आत्मा नहीं है; आत्मा के आधार से ज्ञान है और ज्ञान के आधार से आत्मा है। एक जाति है, स्वजाति है। विजाति में आधार-आधेय संबंध होता नहीं है। अभी एक para रहा बाकी।

इसीको विशेष समझाते हैं:- आधार-आधेय संबंध के लिए एक द्रष्टान्त देते हैं। जिसको आधार-आधेय संबंध बैठता है न, वो अज्ञानी है। यह शास्त्र है न, वो रहल के आधार से नहीं है। आधार

नाम की शक्ति उसमें (शास्त्र में) है। वो (रहल) तो छूता भी नहीं है। टोपी माथे के आधार से नहीं है। आहाहा! जमीन के आधार से पैर चलता नहीं है, जमीन को पैर छूता ही नहीं है, पैर पैर में है और जमीन जमीन में है। अपने, अपने आधार से पैर है, जमीन जमीन के आधार से है। आधार-आधेय संबंध नहीं है, दो तत्त्व भिन्न-भिन्न हैं। जीव और अजीव तत्त्व भिन्न हैं।

यह microphone (ध्वनिग्राही) स्कन्ध है, स्कन्ध, पुद्गल का स्कन्ध है। समझे? तो ये सब परमाणु, अनंत परमाणुओं का पिंड है। तो ये नीचे के परमाणु के आधार से ऊपर के परमाणु नहीं हैं। नीचे के परमाणु आधार और वो (ऊपर के) आधेय, ऐसा नहीं है। आधार-आधेय संबंध नहीं है। परमाणु परमाणु के आधार से है, पुद्गल स्कन्ध के आधार से परमाणु नहीं है। आहाहा! ऐसी सूक्ष्म बात है!

विशेष समझाते हैं:- राग को आत्मा का आधार नहीं है और ज्ञान को आत्मा का आधार है। **विशेष समझाते हैं:- जब एक ही आकाशको** दृष्टान्त देते हैं कि तेरी बुद्धि में विचार कर कि आकाश को किसका आधार है? यह आकाश है न बड़ा लोकाकाश, वह किसके आधार से आकाश रहता है? आकाश को आधार होता नहीं है। आहाहा! **एक ही आकाशको अपनी बुद्धिमें स्थापित करके (आकाशके) आधारआधेयभावका विचार किया जाता है तब** विचार करो आकाश को किसका आधार है? कि आकाश को किसी का आधार होता नहीं है; अपने आधार से आकाश है, खाली जगह। **विचार किया जाता है तब आकाशको शेष अन्य द्रव्योंमें आरोपित करनेका निरोध ही होनेसे** आकाश पुद्गल के आधार से नहीं है, आकाश जीव के आधार से नहीं है, आकाश धर्मास्तिकाय के आधार से नहीं है। किसी परद्रव्य के आधार से आकाश नहीं। आकाश को कोई आधार की जरूरत नहीं। **आरोपित करनेका निरोध ही होनेसे (अर्थात् अन्य द्रव्योंमें स्थापित करना अशक्य ही होनेसे)** आहाहा! **बुद्धिमें भिन्न आधारकी अपेक्षा प्रभवित नहीं होती;** बुद्धि से विचार करने से, ज्ञान से विचार करने से, मानसिकज्ञान से विचार करने से, आकाश पदार्थ को किसी परपदार्थ के आधार की जरूरत नहीं।

यह aeroplane (हवाई-जहाज) चलता है वह आकाश के आधार से नहीं। आकाश के आधार से aeroplane चलता नहीं। आहाहा! उसको आधार-आधेय की जरूरत नहीं, आकाश की। आकाश को उसकी जरूरत नहीं और उसको (आकाश की नहीं)। सबका आधार-आधेय संबंध अंदर में रहता है। **-ફાવી શકતી નથી, ઠરી જાય છે** (जमती नहीं, बंद हो जाती है)। **उसके प्रभवित नहीं होनेसे, 'एक आकाश ही एक आकाशमें ही प्रतिष्ठित है'** आकाश आकाश में रहा हुआ है। आकाश पुद्गल में नहीं, धर्मास्तिकाय में नहीं। आकाश आकाश में है, परमाणु परमाणु में है, जीव जीव में हैं। जीव देह में नहीं। देह देह से है, देह। देह जीव के आधार से नहीं है। आहाहा! यह आधार-आधेय संबंध नहीं। आहाहा! **यह भलीभाँति समझ लिया जाता है** यह भेदज्ञान है। दो द्रव्य की भिन्नता बताते हैं। आहाहा! दो द्रव्य की भिन्नता होने से एकता टूट जाती है। बड़ा लाभ होता है, धर्म होता है!

और इसलिये ऐसा समझ लेनेवालेको पर-आधाराधेयत्व भासित नहीं होता। इसप्रकार जब एक ही ज्ञानको अब दृष्टांत पूरा हो गया। अभी आत्मा की बात करते हैं। आत्मा को किसी का आधार नहीं है। **एक ही ज्ञानको** अर्थात् आत्मा को, **अपनी बुद्धिमें स्थापित करके (ज्ञानके)** विचार

करो कि आत्मा को किसका आधार है? दूसरे के आधार की जरूरत है? कि नहीं (है)। **(ज्ञानके) आधारआधेयभावका विचार किया जाये तब ज्ञानको शेष अन्य द्रव्योंमें आरोपित करनेका निरोध ही होनेसे** राग के आधार से ज्ञान नहीं है और ज्ञान के आधार से राग नहीं है। **बुद्धिमें भिन्न आधारकी अपेक्षा प्रभवित नहीं होती;** संभव ही नहीं है। **और उसके प्रभवित नहीं होनेसे,** नहीं सम्भवने से **'एक ज्ञान ही एक ज्ञानमें ही प्रतिष्ठित है'** ज्ञान ज्ञान में रहता है। ज्ञान में राग नहीं और राग में ज्ञान नहीं है। आहाहा! ऐसी स्वतंत्र वस्तु है। द्रव्य सत्, गुण सत् और पर्याय (सत्)। सत् का ढिंढोरा है, सत् का ढिंढोरा है।

यह भलीभाँति समझ लिया जाता है और इसलिये ऐसा समझ लेनेवालेको पर-आधाराधेयत्व भासित नहीं होता। इसलिये ज्ञान ही ज्ञानमें ही है, ज्ञान ही ज्ञान में है। उपयोग में उपयोग है। उपयोग में क्रोधादि नहीं, उपयोग में दुःख नहीं। आहाहा! ज्ञान में दुःख नहीं, आत्मा में दुःख नहीं। क्या कहा? ज्ञान में दुःख नहीं, आत्मा में दुःख नहीं; दुःख दुःख में है। दुःख दुःख में है, है तब तक है, हमेशा रहने की चीज नहीं। दुःख जाये फिर सुख आये। दुःख हमेशा रहने की चीज नहीं क्योंकि दुःख तो विभाव है, दुःख तो टल जाता है। आत्मानुभव करने पर दुःख टल जाता है और परमानंद की प्राप्ति होती है।

इसलिये ज्ञान ही ज्ञानमें ही है, और क्रोधादिक ही क्रोधादिमें ही है। ऐसा भेदज्ञान जो करे, तो जिसको भेदज्ञान होता है उसको अभेद आत्मा का अनुभव होता है। और मिथ्यादर्शन, मिथ्याज्ञान, (मिथ्या) चारित्र चला जाता है और मोक्षमार्ग, **सम्यग्दर्शनज्ञानचारित्राणि मोक्षमार्गः** (तत्त्वार्थ सूत्र, प्रथम अध्याय, सूत्र १) ऐसा मोक्ष का मार्ग, सुख का मार्ग प्रगट हो जाता है। अल्पकाल में वो सिद्ध परमात्मा हो जाता है।

ॐ